यह नियमसार जीव अधिकार चलता है। नौवीं गाथा। जीव क्या है, उसकी बात चलती है। यहाँ आया है। **शुद्ध निश्चय से सहजज्ञानादि परमस्वभाव गुणों का आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है।** २२वाँ पृष्ठ है, अन्तिम लाईन। अन्तिम लाईन है न? जरा सूक्ष्म विषय है। सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा तीर्थंकरदेव जिन्होंने तीन काल-तीन लोक देखे, उसमें यह छह द्रव्य का ज्ञान भगवान को हुआ। जगत में छह द्रव्य हैं। जाति से छह द्रव्य हैं। संख्या से अनन्त हैं। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति और आकाश—ऐसे छह द्रव्य भगवान तीर्थंकर परमेश्वर ने देखे हैं। उनमें जीवतत्त्व कैसा है, यह बात चलती है।

यह आत्मा जो है, आत्मा कहो या जीव कहो। कारणजीव उसे कहते हैं कि जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति-वीतरागता, ऐसे स्वभाव का आधार, ऐसे त्रिकाली गुणों का आधार जो जीवतत्त्व है, उसे यहाँ कारणजीव कहा जाता है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन धर्म की पहली सीढ़ी, मोक्षमार्ग है न? तो सम्यग्दर्शन की पहली उत्पत्ति होनी चाहिए। वह सम्यग्दर्शन किससे होता है? त्रिकाली ज्ञायक चैतन्य कारणजीव, ध्रुवस्वभाव, नित्य स्वभाव के सन्मुख होकर अन्तर में एकाग्रता करके, अनुभव होकर प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के बिना कोई भी क्रिया हो, वह सब निरर्थक है। समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, ये सब पुण्यभाव, शुभभाव हैं; वे धर्म नहीं हैं।

मुमुक्षु : पुण्यभाव है, वहाँ तक तो ठीक परन्तु धर्म नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म नहीं, इसका अर्थ क्या? पुण्यभाव है तो धर्म नहीं। पण्डितजी! इसमें क्या? यह तो अस्ति-नास्ति से बात हुई। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव, जिन्होंने एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक देखे, उन भगवान की वाणी आयी, उस वाणी को आगम कहते हैं। उस आगम में जीव का ऐसा स्वरूप वर्णन किया है।

भगवान आत्मा शरीर, कर्म, इस क्रिया से तो भिन्न है और अन्दर पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव होते हैं, उनसे भी यह भगवान आत्मा तो भिन्न है। इतना तो नहीं परन्तु उसकी एक समय की पर्याय-अवस्था है, उससे भी भिन्न चैतन्य कारणजीव है। समझ में आया? एक समय की अवस्था वह तो व्यवहार आत्मा है, पण्डितजी! व्यवहार आत्मा कहाँ से आया? एक समय की अवस्था, वह व्यवहार आत्मा, अभूतार्थ आत्मा है; सत्यार्थ नहीं। आहा..हा..! त्रिकाल ज्ञायक चैतन्यमूर्ति भगवान, जिसमें शुद्ध निश्चय से-स्वभाव शुद्ध है और निश्चय सत्य त्रिकाल है। सहजज्ञान, स्वाभाविक अन्तर ज्ञान, ध्रुवज्ञान, स्वाभाविकआनन्द, स्वाभाविकदर्शन, स्वाभाविकवीर्य आदि **परमस्वभाव गुणों का आधार...** ऐसे परमगुण, शक्तियाँ कहो या गुण कहो। ऐसी ध्रुवशक्तियों का **आधार होने के कारण... आधार होने के कारण 'कारणशुद्ध जीव' है।** कहो, सेठी! कारणशुद्ध जीव क्या कहा? जीव में कारणशुद्ध जीव और कार्यशुद्ध जीव। आहा..हा..!

भगवान आत्मा, एक ही यह आत्मा, एक सेकेण्ड के असंख्यवें भाग में अनन्त ज्ञान, बेहद शक्तियाँ जो अनन्त गुण हैं, वे आधेय हैं और आत्मा आधार है। वह आधार-आधेय का भेद छोड़कर त्रिकाली कारणस्वभाव जो आत्मा है, उसे कारणजीव कहा जाता है। उस कारणजीव के आश्रय से, अवलम्बन से सम्यग्दर्शन आदि धर्म की पर्याय होती है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! अभी तो यह बाहर से ऐसा करो और वैसा करो, पण्डितजी! आहा..हा..!

मुमुक्षु : सब गोल-गोल बात हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : गोल-गोल बात क्या हुई? अभी स्पष्ट नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं। ऐसे तो स्पष्ट बात आयी कि जिसे अपने धर्म की दशा प्रगट करनी हो, धर्म एक दशा है, अवस्था है, धर्म कोई त्रिकाली गुण नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र... यहाँ मोक्षमार्ग अधिकार है न? तो सम्यग्दर्शन अन्तर में वीतरागी पर्याय श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र, ये तीनों वीतरागी पर्याय हैं, वह मोक्ष का मार्ग है। वह वीतरागी पर्याय उत्पन्न कहाँ से होती है? कि व्यवहार दया, दान, व्रत, भक्ति करने से वह पर्याय उत्पन्न होती है?

मुमुक्षु : क्यों नहीं होती?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होती। वह तो राग है। सम्यग्दर्शन पर्याय उत्पन्न करने की सामर्थ्य राग में नहीं है। शुकनचन्दजी! भारी सूक्ष्म आया।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यह अहिंसा। इसका नाम अहिंसा। अपना स्वभाव त्रिकाली शुद्धकारण जीव है, उसका आश्रय लेकर वीतरागी पर्याय प्रगट हो, उसे अहिंसा कहा जाता है।

मुमुक्षु : दया, दान को हिंसा कहने में आता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दया, दान के विकल्प तो राग हैं।

मुमुक्षु : उन्हें हिंसा कहने में आता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग कहो या हिंसा कहो, एक ही बात है। मार्ग तो वीतराग का मार्ग है यह। कोई कल्पना से कहे कि ऐसे सुधार करो, ऐसे करो, वैसे करो, वह मार्ग

वीतराग का नहीं है। भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की दिव्यध्वनि में जो आगम आये, उन आगम में छह द्रव्य कहे। उन आगम में जीव को त्रिकाली शक्तिवन्त जीव को कारणजीव कहा है। समझ में आया? कारणजीव क्यों कहा? (इसलिए) कि उसके आश्रय से अन्तर्दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों, अन्तरवस्तु जो त्रिकाली आत्मा है, उसके आश्रय से मोक्षमार्ग की उत्पत्ति होती है। आहा..!

मुमुक्षु : अहिंसा की बात तो हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयम वह। अहिंसा का अर्थ क्या? रागरहित अपनी दशा प्रगट करना, वह अहिंसा है। संयम का अर्थ यह है। विकल्प का त्याग करके निर्विकल्प आनन्द की उग्र दशा प्रगट होने का नाम संयम है।

मुमुक्षु : तप?

पूज्य गुरुदेवश्री : तप अर्थात् इच्छा का नाश करके अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र शोभा होना, उसका नाम तप है।

मुमुक्षु : आपकी सब व्याख्या अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की व्याख्या ही अलग है। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की व्याख्या है। यह किसी के घर की व्याख्या नहीं है। समझ में आया? तपन्ति इति तपः। जिस प्रकार स्वर्ण को गेरु लगाते हैं न? गेरु कहते हैं न? लाल गेरु होती है न? वह गेरु लगावे तो सोने की शोभा होती है। ओपिक-शोभिक। इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त आनन्द ज्ञान-दर्शन का पिण्ड प्रभु आत्मा है। उसके आश्रय से वीतराग की निर्मल निर्दोष अमृत दशा उत्पन्न होना, इसका नाम परमेश्वर सच्चा तप कहते हैं। यह धम्मो मंगलं... आहा..हा..! ऐसा इसका अर्थ है। भाई! दिगम्बर में ऐसा आता है। यह तो श्वेताम्बर के दशवैकालिक की गाथा है परन्तु दिगम्बर में यह गाथा है। किसी के घर की नहीं। दिगम्बर में यह है। सनातन गाथा अनादि की है।

मुमुक्षु : दिगम्बर में से श्वेताम्बर में जोड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर में से श्वेताम्बर ने ले ली है।

मुमुक्षु : चोरी का माल।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी है। सनातन जैनदर्शन दिगम्बर सनातनदर्शन था। समझ में आया? दुष्काल पड़ा, उसमें से श्वेताम्बर पन्थ निकला है। वह सनातन पन्थ नहीं है। अर्वाचीन है, प्राचीन नहीं। पण्डितजी! बात तो ऐसी है। अर्वाचीन, प्राचीन तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा, ऐसे अन्तर के धर्म मंगलं... धर्म वह उत्कृष्ट मांगलिक है। उसकी व्याख्या? हिंसा...

भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान का आधार कारणजीव है। शुद्ध, शुद्धध्रुव। उसमें एकाग्र होकर वीतरागी निर्दोष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति की उत्पत्ति हो, उसका नाम अहिंसा है। राग की उत्पत्ति हो, उसका नाम हिंसा है। बहुत सूक्ष्म बात है। लोगों को वीतराग का मूल पन्थ, सर्वज्ञ का मूल मार्ग हाथ में आना बहुत मुश्किल है। समझ में आया? सनातन अनादिमार्ग वीतराग का है। अन्तर में से सनातन भगवान आत्मा, कारणशुद्ध जीव यहाँ कहा न? कारणशुद्ध जीव ध्रुव, नित्यानन्द प्रभु, 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' यह बनारसीदास में आता है। बनारसीदास, यह समयसार नाटक दोपहर को चलता है न?

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ॥
ग्यानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग, वेगि मिटै भववास बसेरौ॥

यह बनारसीदास के समयसार नाटक की कड़ी है। समयसार की, हों! सब समयसार में से लिया है। **चेतनरूप**—मैं तो चैतन्य ज्ञान का रूप-स्वरूप हूँ। **चेतनरूप अनूप**—मेरे अन्तर आनन्द ज्ञानस्वरूप को कोई उपमा नहीं है। इसे कोई उपमा लागू नहीं पड़ती। **चेतनरूप अनूप अमूरति,** इसमें कोई रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं है—ऐसा मैं आत्मा, **सिद्धसमान सदा पद मेरौ।** जैसे सिद्ध भगवान—णमो सिद्धाणं—सिद्ध भगवान हैं, वैसा ही मेरा स्वरूप है। समझ में आया? सिद्ध भगवान में पुण्य-पाप, विकल्प राग आदि नहीं हैं। समझ में आया? ऐसा मैं सिद्धसमान ज्ञायकभाव, शुद्ध, सत्, शाश्वत् आनन्द आदि गुणों के आधाररूप आत्मा हूँ। उसका आश्रय लेकर; संयोगी चीज़ राग और अल्पज्ञ पर्याय की उपेक्षा करके, त्रिकाली कारणजीव की अपेक्षा आश्रय में लेकर, अन्तर में जो निर्दोष वीतरागी दशा उत्पन्न होती है, उसे अहिंसा, संयम, तप, इन तीनों को कहते हैं। पर

की दया का भाव, वह तो विकल्प / राग है। इन्द्रियों का दमन करना, वह भी एक विकल्प है। समझ में आया? छह काय की दया पालने का भाव, वह भी एक विकल्प है, राग है। आहा..हा..! समझ में आया?

परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा फरमाते हैं, ऊपर आया है। भगवान की मुख्य वाणी में ऐसा आया है, प्रभु! तेरी चीज़ तो अन्दर में कारणशुद्ध जीव त्रिकाली ध्रुव पड़ी है। आत्मा का त्रिकाली स्वभाव, वीतराग निर्दोष आनन्दकन्द है। ध्रुव, ध्रुव को ध्येय बनाकर वर्तमान दशा में जो ध्रुव में से वीतरागी दशा प्रगट हो, जिसमें राग के अंश का साथ नहीं, मदद नहीं – ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपने स्वभाव के आश्रय से प्रगट हों, उसे अहिंसा कहते हैं, उसे संयम कहते हैं, उसे तप कहते हैं। व्याख्या ऐसी है, भाई! कठिन है। जगत को क्या कहें? अपूर्व बात अनन्त काल में इसने सुनी नहीं। कहते हैं, कारणशुद्ध जीव है, उसमें से कार्यशुद्ध जीव प्रगट होता है।

मुमुक्षु : ....तो कठिन कहाँ रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है ही नहीं। कभी सुना ही नहीं, इसलिए कठिन है। जयपुर में क्या सुना था?

मुमुक्षु : नहीं बोले।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं बोले। सुनते नहीं, ऐसा कहेंगे।

मुमुक्षु : सुना हो तो भी बोले नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : तो यह बात कठिन कैसे है? अनन्त काल से दुर्लभ सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी इसे खबर नहीं है। बारह भावना में आता है या नहीं? बोधिदुर्लभ भावना। बोधिदुर्लभ भावना, तो बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को बोधि कहते हैं। वह बोधि अनन्त काल में कभी भी एक सेकेण्ड भी उत्पन्न नहीं की। जैन साधु दिगम्बर अट्ठाईस मूलगुण पालन कर नग्न होकर अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, वह धर्म नहीं है। समझ में आया? पुण्यक्रिया से वह स्वर्ग में गया। 'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो फेर पीछे पटक्यो' शुकनचन्दजी! ऐसा आता है।

दुकान पर थे तब मैने पढ़ा था। (संवत्) १९७० के वर्ष पहले दुकान पर (पढ़ा

था)। वह पुस्तक यहाँ है, चार सज्झायमाला है। श्वेताम्बर की चार सज्झायमाला है। एक-एक सज्झायमाला में दो सौ-तीन सौ-चार सौ सज्झाय है, ऐसे चार भाग हैं। यहाँ है। एक भाग नहीं आया। मैंने तो दुकान पर चारों भाग देखे थे। पालेज में हमारे पिताजी की घर की दुकान थी। मैंने तो चारों भाग देखे थे। उसमें उस समय यह आया था। खबर है। 'द्रव्य संयम से ग्रैवेयक पायो फेर पीछे पटक्यो' जेठाभाई! द्रव्य संयम अर्थात्? आत्मा क्या चीज़ है, उसकी अनुभवदृष्टि सम्यग्दर्शन बिना ऐसी पंच महाव्रत आदि की क्रिया अनन्त बार हुई, वह द्रव्यसंयम है, भावसंयम नहीं। जयन्तीभाई!

मुमुक्षु : संयम के भी दो भाग।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, संयम के भी दो भाग। द्रव्यसंयम, भावसंयम। समकित के दो भाग, व्यवहार समकित, निश्चय समकित। चारित्र के दो भाग, द्रव्यचारित्र, भावचारित्र; व्यवहारचारित्र, निश्चयचारित्र। प्रत्येक के दो-दो भाग हैं। तप में व्यवहार तप और निश्चय तप। प्रत्येक में द्रव्य और भाव। व्यवहार-निश्चय... व्यवहार-निश्चय है। भगवान का मार्ग गम्भीर है, प्रभु! ऐसे मिल जाता होता तो अनन्त काल में क्यों नहीं मिला? आहा..हा..! महाव्रत का आचरण भी अनन्त बार किया। सुना है न, देखो! छहढाला में आता है।

'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।'

इसका अर्थ भाई यह करते हैं, वह अभव्य मिथ्यादृष्टि थे, ऐसा अर्थ करते हैं। यह तो गजब करते हैं न! अभी ही जैनगजट में आया है। वह तो अभव्य मिथ्यादृष्टि की बात है। अरे! भव्य मिथ्यादृष्टि अनन्त बार (नौवें ग्रैवेयक गया है।) सुन तो सही। नौवें ग्रैवेयक इकतीस सागर की स्थिति में अनन्त बार भव्य-अभव्य उत्पन्न हुए हैं। नौवें ग्रैवेयक।

ग्रीवा (गर्दन) के स्थान में चौदह राजू लोक खड़े पुरुष के आकार में हैं। उसकी ग्रीवा के स्थान में नौ पासड़ा है। नौवें ग्रैवेयक की अन्तिम ग्रैवेयक में इकतीस सागरोपम की स्थिति है, वहाँ भी अनन्त बार भव्य जीव भी अनन्त बार गया। अभव्य तो बहुत कम हैं। समझ में आया? अनन्त-अनन्त सागरोपम ऐसे पुद्गलपरावर्तन किये हैं। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। साधु, दिगम्बर मुनि (होकर) पंच महाव्रत (पालन किये परन्तु) अन्तर आत्मा क्या? अनुभव क्या? सम्यग्दर्शन (क्या)? (इसकी खबर बिना) वह राग से धर्म

मानता था। क्रियाकाण्ड, वह धर्म है, उससे मुझे धर्म होगा। मिथ्यादृष्टि होकर, पुण्य के कारण स्वर्ग में गया। फिर वापस गिरा। समझ में आया? आहा..हा..!

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि। उल्टे उसमें धर्म माना। पुण्य की क्रिया है, वह तो राग की (क्रिया है)।

मुमुक्षु : शास्त्रों का अर्थ उलटा....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे नहीं तो क्या करे? अन्तर की दृष्टि बिना उस बात का अर्थ वह (समझ नहीं सकता)।

मुमुक्षु : उसके मस्तिष्क में श्वेताम्बर शास्त्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह श्वेताम्बर का कहता है। श्वेताम्बर परन्तु उसके वास्तविक अर्थ को नहीं समझते।

मुमुक्षु : अहिंसा, संयम और तप का अर्थ आपने बतलाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है उसमें। परन्तु उसमें नहीं, लेखन में नहीं, खबर है। उसका ऐसा अर्थ नहीं करते। हमारे गुरु थे वे भी ऐसा अर्थ करते थे - पर की दया पालना, वह अहिंसा। इन्द्रियों को रोकना, वह संयम। उपवास करना, वह तप। हमारे गुरु थे हीराजी महाराज, बहुत शान्त थे, कषाय बहुत मन्द थी, दृष्टि / तत्त्व की खबर नहीं थी, बहुत ही मन्द कषाय थी, उनके लिये चौका बनाकर आहार-पानी बनाया हो तो प्राण जाये तो भी न ले। चौका तो कहाँ से परन्तु खबर पड़े कि हमारे लिये गर्म पानी किया है। साधु के लिये जग में गर्म (पानी रखा हो तो) ले नहीं। पानी गर्म किया हो वह न ले। (क्योंकि) हमारे लिये किया है। एक बूँद में असंख्य जीव हैं। पानी की एक बूँद में असंख्य जीव हैं। प्राणी हिंसा। ऐई! धीरुभाई! तुम्हारे गाँव को नापानियो किया था। वहाँ पानी बनाते नहीं नागनेशवाले। वे फिर मुनि आये थे कि यह नापानिया गाँव है। हीराजी महाराज जहाँ जायें, वहाँ उनके लिये पानी बनाया हो (गर्म किया हो) तो लें नहीं। ऐसी क्रिया थी परन्तु वह मिथ्यादृष्टि। दृष्टि ही मिथ्यात्व थी। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, धम्मो मंगलं की व्याख्या ही यह है।....जिसे आत्मा आनन्द और

ज्ञानस्वरूप में धर्मबुद्धि है, उसे तो देव भी नमन करते हैं। मनुष्य की तो बात क्या? ऐसा कहते हैं... धर्म क्या चीज़ है? धर्म तो अलौकिक आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति-वीतरागदशा उत्पन्न हो, वीतरागीस्वभाव के कारण में से (वीतरागी दशा उत्पन्न हो, वह धर्म है)। भगवान आत्मा वीतरागीस्वरूपी त्रिकाल है। उस कारण जीव का आश्रय करने से वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (प्रगट हों), वही संयम, तप और अहिंसा है। समझ में आया?

'**कारणशुद्ध जीव**'... लो, कितना कारणशुद्ध जीव में पड़ा है! ओहो..हो..! अब कहते हैं कि **यह (जीव) चेतन है;...** आत्मा चेतन है, तो **इसके चेतन गुण हैं।** ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वे चेतन गुण हैं। चेतन के चेतन गुण हैं। **यह अमूर्त है;...** भगवान आत्मा अमूर्त है। दूसरे (द्रव्य) भी अमूर्त हैं। **यह अमूर्त है; इसके अमूर्त गुण हैं।** आत्मा अरूपी है, अमूर्त है, तो ज्ञान-दर्शन-आनन्द, वे भी अमूर्त हैं। गुणी अमूर्त है तो गुण भी अमूर्त है। आहा..हा..! **यह शुद्ध है;...** उसके गुण शुद्ध हैं। जो आत्मा पवित्र शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु है तो उसके गुण भी शुद्ध हैं।

यह अशुद्ध है; इसके अशुद्ध गुण हैं। जिसकी दृष्टि में आत्मा का भान नहीं हुआ और पुण्य-पाप के विकल्प में धर्म मानता है, वह जीव अशुद्ध है। उसके गुण भी अशुद्ध हैं। यहाँ गुण शब्द से (आशय है) पर्याय। आहा..हा..! समझ में आया? उसके अशुद्ध गुण हैं। **पर्याय भी इसी प्रकार हैं।** क्या कहते हैं? भगवान के आगम में ऐसा आया कि भगवान आत्मा वस्तुरूप से शुद्ध है, उसके गुण भी शुद्ध हैं और उसके आश्रय से निर्मल वीतरागी पर्याय हो, वह भी शुद्ध है। समझ में आया?

सामायिक किसे कहते हैं, उसकी खबर नहीं कि इस सामायिक की बैठक में बैठ जाये और दो घड़ी णमो अरिहंताणं... णमो अरिहंताणं (करे), लो! अरे भाई! सामायिक तो, एक सेकेण्ड की सामायिक जन्म-मरण का नाश कर डाले, उसका नाम सामायिक है। पहले सम्यग्दर्शन की सामायिक बिना सम्यग्ज्ञान की सामायिक नहीं होती और स्वरूप की स्थिरता की सामायिक नहीं होती। आहा..हा..! यह कहते हैं, देखो!

शुद्धपर्याय। भगवान आत्मा शुद्ध गुण है, द्रव्य शुद्ध है, त्रिकाली द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है तो उसकी पर्याय भी शुद्ध है। निर्मल दशा, निर्दोष दशा, वह पवित्र शुद्ध है। समझ

में आया ? सामायिक इत्यादि भाव है, वे आत्मा के आश्रय से उत्पन्न हुए हों, वह सामायिक और वह पर्याय शुद्ध है। समझ में आया ? यह जीव की व्याख्या हुई।

मुमुक्षु : द्रव्य को शुद्ध कहा और गुण को अशुद्ध कहा, वह किस प्रकार से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय कही। गुण तो अशुद्ध कहाँ है ? पर्याय की अपेक्षा से अशुद्ध कहा जाता है।

ऐसे जीव का ज्ञान भगवान ने कहा, ऐसा इसे जानना चाहिए। परमेश्वर ने कहा वैसा कारणजीव, गुण और निर्मल पर्याय, जो उसके आश्रय से उत्पन्न हो, उन तीन को शुद्ध कहते हैं - ऐसा जानना चाहिए। परन्तु वह पर्याय कारणजीव से उत्पन्न होती है। समझ में आया ? आहा..हा..! अपूर्व मार्ग है, भगवान! साधारण मार्ग हो तो नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया है। ओहो..हो..! चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो भी क्रोध नहीं किया, ऐसी क्रिया अनन्त बार की है। वह कोई धर्म नहीं है। वह तो पुण्य का, क्षमा का विकल्प है; धर्म तो भगवान शुद्ध चैतन्य कारणपरमात्मा तो अपना स्वभाव पूर्ण ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, उसके अवलम्बन से जो निर्मलता प्रगट हो, उसे भगवान धर्म और मोक्ष का मार्ग कहते हैं। यह बाहर में पूरी प्रथा ही अभी गुम हो गयी है। समझ में आया ? उसने लिखा, कल कहा न ? अमरचन्द नाहटा है न कोई ? नग्नपने का आग्रह किया तो हमारे आगम माने नहीं, ऐसा लिखा है। वह सब झूठ है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण जिसे प्रगट आनन्द हुआ हो, ऐसे मुनि को नग्नदशा सहज हो जाती है। समझ में आया ? यह तो अनादि वीतराग का मार्ग है। वस्त्र रखे और अन्दर में मुनिपना हो जाये, ऐसा तीन काल में नहीं होता। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई! पक्षपात की बात लिखो तो वह नहीं चलता। भाई ने उसमें लिखा है, देखो!

भगवान! ३२-४५ आगम में तो इतनी विरुद्धता है कि उनके वाँचनकार ने भी उसमें से विरुद्धता निकाली है। समझ में आया ? भगवान के मार्ग में तो अनादि से (यह चलता है)। अन्तर आत्मा के आनन्द का अनुभव करके जो चारित्र का प्रगट प्रचुर स्वसंवेदन हुआ, उसे वस्त्र और पात्र रखने की वृत्ति नहीं होती। समझ में आया ? जिस आगम में वस्त्र-पात्र रखकर साधु मनवाते हैं, वह आगम ही नहीं है। वह भगवान के आगम नहीं हैं। यहाँ तो यह बात है।

मुमुक्षु : परिग्रह रखे वह साधु नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो परिग्रह है - वस्त्र-पात्र तो परिग्रह है। वस्त्र का एक टुकड़ा रखे और मुनि माने, मुनि मनावे, वह निगोद में जायेगा - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने अष्टपाहुड़ में लिखा है। आहा..हा..! मार्ग तो अनादि से ऐसा है। किसी का कल्पित नहीं है, परन्तु वह मात्र बाहर की चीज़ नहीं है; अन्तर में अनुभव होना चाहिए। अन्दर के आनन्द की दशा बिना बाहर की नग्नदशा को निमित्त भी नहीं कहा जाता। अन्तर के आनन्द की दशा प्रगट होकर जहाँ अन्दर में से वीतरागता का पूर आया, उसे वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प ही नहीं होता, ऐसी पक्की श्रद्धा करो। समझ में आया? इसका नाम अन्दर मुनिपना-भावलिंग प्रगट हुआ हो, उसका द्रव्यलिंग नग्न ही होता है। वस्त्र-पात्र रखे और मुनि माने, वह जैनमार्ग में नहीं है, वह वीतरागमार्ग में नहीं है। पण्डितजी! किसी व्यक्ति के प्रति द्वेष नहीं करना। आत्मा है। कोई व्यक्ति हो, माने विपरीत, परन्तु उसका द्वेष नहीं करना। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....परीषह सहन करता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सहन करना ही नहीं, वह तो ज्ञाता-दृष्टा हो गया है। परीषह आता है, उसे जानता है। आनन्द में रहकर जानता है। ऐसी चीज़ है, भाई! साधुपद तो कोई अलौकिक चीज़ है। जिसे गणधर नमस्कार करे, वह साधुपद लोगों को ख्याल में ही नहीं आया, बापू! आहा..हा..! यहाँ तो पहले यथार्थ सम्यग्दर्शन करो। सम्यग्दर्शन के बिना साधुपना या कोई व्रत, नियम नहीं होते। समझ में आया? आहा..हा..! यह जीव की बात की।

अब पुद्गल की (बात करते हैं)। भगवान ने पुद्गल देखे हैं। यह जड़-पुद्गल है। यह शरीर, वाणी यह सब, पैसा-लक्ष्मी, मकान पुद्गल है, जड़ है, अजीव है। यह शरीर अजीव होकर रहा है या जीव होकर रहा है? यह तो मिट्टी है। वाणी निकलती है, वह भी अजीव है। आत्मा में से नहीं निकलती। वाणी आत्मा में से नहीं निकलती। आत्मा में वाणी कहाँ है? वाणी तो पुद्गल है। आहा..हा..! मैं बोलता हूँ, मैं ऐसा करता हूँ, वह पुद्गल का स्वामी होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। अजीव को जीव माने, ऐसी भाषा बोले। आता है या नहीं? अजीव को जीव माने। पच्चीस (प्रकार के) मिथ्यात्व। कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व; साधु को कुसाधु माने तो मिथ्यात्व; मार्ग को कुमार्ग माने तो मिथ्यात्व;

कुमार्ग को मार्ग माने तो मिथ्यात्व, ऐसा बोले। (कुमार्ग को) मोक्षमार्ग माने तो मिथ्यात्व, यह बोले।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है तो वही मानता है। आहा..हा..! श्वेताम्बर के पंचम श्रमणसूत्र में तो ऐसा आता है। पंचम श्रमणसूत्र है। अपने दिगम्बर में भी आता है। परन्तु वह... प्रतिक्रमण का सूत्र है। यहाँ तो सब पुस्तकें हैं न? हजारों। श्वेताम्बर-दिगम्बर की पुस्तकें हैं। दिगम्बर में भी प्रतिक्रमण सामायिक है, परन्तु बाहर में बहुत प्रचलित नहीं है। उसमें पाँचवें श्रमणसूत्र में तो ऐसा आया है, विचतं परिणामी शाम सबेरे बोले। पाँचवाँ श्रमणसूत्र है। मिथ्यात्व को त्याग करता हूँ, समकित को (ग्रहण करता हूँ) परन्तु मिथ्यात्व और समकित क्या है, उसकी खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : भगवान को मानना वह समकित।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान को मानना, नवतत्त्व को मानना, वह समकित। अरे! चल.. चल.. ऐसी मान्यता तो अभव्य भी करता है। यह मान्यता नहीं। अभव्य का बाप है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो ऐसा कहते हैं कि जिसकी श्रद्धा यथार्थ नहीं है—भगवान को आहार मानता है, भगवान को कवलाहार मानता है, वह अभव्य है, ऐसा कहा है। कुन्दकुन्दाचार्य नग्न दिगम्बर मुनि जंगलवासी थे। संवत् ४९ में भगवान के पास गये थे, वर्तमान में सीमन्धर परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेह में विराजमान हैं। वहाँ गये थे और वहाँ से आकर ये सब शास्त्र बनाये हैं। ऐसी बात इनमें लिखी है। समझ में आया? पुद्गल भाषा, आत्मा की नहीं। शरीर, आत्मा का नहीं। शरीर की गति होती है, वह जड़ की गति है, आत्मा की गति नहीं।

मुमुक्षु : यह तो मर जाये तब न?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यहाँ जीवते जीव में यह कहाँ है? भाषा तो जड़ है।

मुमुक्षु : अभी यह शरीर....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी यह मृतक कलेवर है। मुर्दा-मुर्दा है। अजीव होकर रहा है या जीव होकर? अजीव तो मुर्दा है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : व्यवहार से जीव है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से भी जीव कहाँ ? धूल में है। कहो, भीखाभाई ! आहा..हा.. ! जड़-पुद्गल और आत्मा भिन्न क्या है, इसकी खबर नहीं। जहाँ-तहाँ अभिमान (किया) ऐसे पुद्गल, ऐसे पदार्थ। अभी अमरचन्दजी आये थे। कवि है न ? उनका लेख ऐसा आया है कि पुद्गल के बिना आत्मा विचार नहीं कर सकता। पुद्गल के आधार बिना संसारी काम नहीं कर सकता। आहा..हा.. ! वह कुछ कहता न कि हमारे हरजीवनभाई थे न, उसने कहा।

मुमुक्षु : अपनी-अपनी गाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी-अपनी गाते हैं। यह समढियावाले हरजीवनभाई ने (संवत्) २००२ के वर्ष में प्रश्न किया था। महाराज ! पैसे के बिना हमारे चले ? पैसे के बिना तो अनादि से चल रहा है। यदि पैसा तुम्हारे में घुस जाये तो तुम जड़ हो जाओ। पैसे का तुझमें अभाव है और तेरे भाव में तेरा भाव है।

मुमुक्षु : किसके बिना नहीं चलाया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त बार मिथ्यात्व के बिना नहीं चलाया।

मुमुक्षु : अनादि काल से....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि। यह (संवत्) २०१० में वर्ष में कहा था। बोटाद में म्युनिसिपलिटी में व्याख्यान था। ऐ.. शिवलालभाई ! खबर है या नहीं ? तब इसके पिता ने कहा था। देव-शास्त्र-गुरु शुद्ध। शुद्ध वे पर ? तब यह पूछा था। खबर नहीं होती। फिर बाद में कुछ नरम पड़ गया था। यह वस्तु ऐसी है। अबोल वस्तु... अमोल वस्तु। ओहो..हो.. ! भगवान आत्मा शरीर और वाणी और पैसे बिना ही इसमें निभाया है, क्योंकि इसमें है नहीं। अपने में अपना है और पर का अपने में है नहीं, तो पर के बिना ही निभाया है।

मुमुक्षु : मर्यादित मनुष्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब इसके बिना परद्रव्य की नास्ति है। उसमें ऐसा कहा था। उसके बिना निभाया है। क्या है ? आहा..हा.. ! उसने ऐसा लिखा है, लो, एक अमर भारती आती है न ? मासिक पत्रिका आती है। उसमें ऐसा आया है। तत्त्व से बहुत ही

विरुद्ध (लिखा है) और मानता है कि हम बहुत जानते हैं। एक जगह बोले हैं, हों! अलीगढ़ में या कहीं बोले हैं कि दिगम्बर... क्या कहा था? भाई ने कहा नहीं था? वे पण्डितजी आये थे न।

मुमुक्षु : सुहालालजी,

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सुहालालजी पण्डित। उसने कहा था, भाई! श्वेताम्बर वह, फिर दिगम्बर वह मूल मार्ग है। मूल नहीं परन्तु उग्र मार्ग है - ऐसा कुछ था, ऐसी कुछ भाषा थी। दिगम्बर का सर्वोत्कृष्टपना कहा था। वे लोग सामने बैठे हों। यहाँ पुद्गल के खेल बिना। यहाँ परमात्मा तो कहते हैं कि मन, वाणी और देह तो पुद्गल है। उसके बिना ही आत्मा यहाँ है। आत्मा मन का, वाणी का, देह का कुछ नहीं कर सकता। गजब कठिन बात।

मुमुक्षु : परन्तु साहिब पैसे के बिना सब्जी नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में... सब्जी तो पैसे के बिना आती है। जगत से उलटा है, भाई! परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा, जिन्हें सौ-सौ इन्द्र पूजते थे, उनकी वाणी में ऐसा आया है। माने, न माने स्वतन्त्र प्राणी है। अनन्त काल से उल्टा तो माना है। (वे) कहते हैं कि पुद्गल के आधार बिना आत्मा सांसारिक कुछ नहीं कर सकता। भगवान कहते हैं कि पुद्गल के आधार बिना ही आत्मा सब कर सकता है। आहा..हा..! समझ में आया?

पुद्गल कैसा है? **गलन-पूरण स्वभावसहित है...** देखो! **(अर्थात्, पृथक् होने और एकत्रित होने के स्वभाववाला है),...** रजकण इकट्ठे हों, भिन्न पड़े, उनका स्वभाव है। वाणी आती है और छूट जाती है, यह पुद्गल का स्वभाव है। आत्मा का स्वभाव नहीं। आत्मा तो जानने-देखनेवाला है। आत्मा बोल नहीं सकता, आत्मा (कुछ) कर नहीं सकता। आहा..हा..! पूरण अर्थात् पृथक् है न? गलन। गलन अर्थात् पृथक् पड़ना, पूरण अर्थात् इकट्ठा होना। यह पुद्गल है। पुद्गल का स्वभाव जड़ का है। लड्डू बनना, रोटी बनना, पानी गर्म होना, साग-भाजी बनना, वह सब पुद्गल का स्वभाव है। पुद्गल से बनता है। कोई आत्मा उसे करता है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : कहीं अग्नि बिना साग चढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : अग्नि बिना साग स्वयं से चढ़ती है। साग समझे न ? तरकारी, उसे अग्नि स्पर्श भी नहीं करती। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी स्पर्श नहीं करता। अभाव है। सब्जी भी अपनी पर्याय से चढ़ती है। पुद्गल है न ? पुद्गल कहा न ?

मुमुक्षु : गलन, गलन स्वभावी।

पूज्य गुरुदेवश्री : गलता है, उसमें क्या है ? वह तो उसका स्वभाव है। क्या अग्नि कर सकती है ? उसका आत्मा कर सकता है ? मिथ्याश्रद्धा है। मैं जड़ का कुछ काम कर सकूँ, यह मान्यता मूढ़ मिथ्यादृष्टि जीव की है, वह जैन नहीं है। उसे वीतराग जैन की श्रद्धा नहीं है। बात तो ऐसी है।

यह (पुद्गल) श्वेतादि वर्णों के आधारभूत मूर्त है;... देखो ! यह तो श्वेतादि तो पर्याय है, परन्तु यहाँ लोगों को समझाने के लिये गुण लिया है। पुद्गल में श्वेत / सफेद, नीली अवस्था होती है। उसके **आधारभूत मूर्त है;...** पुद्गल तो मूर्त है, जड़ है। यह वाणी पैसा, दाल, भात, सब्जी, मकान, जवाहरात, इज्जत सब पुद्गल है, जड़ है। आहा..हा.. ! **श्वेतादि वर्णों के आधारभूत मूर्त है; इसके मूर्त गुण हैं।** मूर्त गुण हैं। पर्याय ली है न ? यह परमाणु के गुण हैं। **यह अचेतन है;...** उसके अचेतन गुण हैं। वह तो अचेतन है तो उसके गुण भी अचेतन हैं, पर्याय भी अचेतन है। चेतन की पर्याय चेतन में और अचेतन की पर्याय अचेतन में। कहो, यह पुद्गल की व्याख्या की।

मुमुक्षु : सोनगढ़ का मार्ग ही अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग अलग है। जड़ और चैतन्य दोनों भिन्न हैं। जीव और अजीव दोनों भिन्न हैं। अत: पुद्गल की क्रिया पुद्गल से होती है, आत्मा की क्रिया आत्मा से होती है। आत्मा पुद्गल की क्रिया करे – ऐसा मानता है, वह जड़ का अभिमानी है। मिथ्यादृष्टि है। कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : आप बोलते तो हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बोलता है ? भाषा बोलती है। आत्मा भाषा में आ गया ? भाषा तो जड़ है। पण्डितजी ! आहा..हा.. ! वह (आत्मा) तो अरूपी है। उसमें तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श है ही नहीं।

मुमुक्षु : भाषा को क्या खबर पड़े कि ये पण्डितजी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कहाँ खबर है ? यह तो ज्ञान को खबर है। भाषा तो ऐसी निकलती है। स्व-पर जानने की शक्ति आत्मा में है। स्व-पर कथा करने की शक्ति जड़ में है। स्व-पर जानने की शक्ति आत्मा में है और स्व-पर कथा करने की शक्ति जड़ में है।

मुमुक्षु : जीव में नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव में नहीं। आहा..हा..! अभी सुधारने के नाम पर सुधरा हुआ ऐसा हुआ और ऐसे बड़े-बड़े भाषण करे और लोगों का रंजन हो। लोग इकट्ठे हों, हों सब बात मिथ्यात्व की। ओहो..हो..! मिथ्यात्व दृढ़ हो और माने कि हम धर्म कथा करते हैं। पर का कुछ कर सके, ऐसी कथा करता है, वह तो दंसणभेद की कथा है। समकित का नाश करनेवाली कथा है। समझ में आया ? सेवा करो, पर की सेवा करो। कौन करे ? सुन तो सही। पर की सेवा की व्याख्या क्या ? पर आत्मा और जड़ उसकी पर्याय तो उससे होती है। पर का तू क्या कर सकता है ?

मुमुक्षु : तो क्या करना ? हाथ जोड़कर बैठे रहना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ कहाँ इसके बाप के हैं ? हाथ तो जड़ का है। हाथ का हलन-चलन तो जड़ से होता है, आत्मा से नहीं। कहो, समझ में आया ? यहाँ तो पूरण गलन स्वभाव सब परमाणु / पुद्गल का है। गर्म पानी है, ठण्डा पानी गर्म होता है, वह तो उसकी पर्याय का स्वभाव है। वह ठण्डे का गर्म आत्मा कर सकता है, ऐसा है नहीं। आत्मा खा सकता है ? दाँत का दबाव देकर रोटी का टुकड़ा कर सकता है आत्मा ? टुकड़ा तो गलन हुआ, पुद्गल का गलन हुआ।

मुमुक्षु : पेट में दाँत होते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सब अंग्रेजी की भाषाएँ सब। यहाँ बराबर करना (ऐसा कहते हैं)। परन्तु करे कौन ? वह तो जड़ की क्रिया है। उसका पूरण-गलन स्वभाव है। रोटी बनी, वह तो पूरण हुआ, टुकड़ा हुआ, वह तो गलन हुआ। किसका हुआ ? क्या आत्मा कर सकता है ?

मुमुक्षु : इस दुनिया में रहा जाये ऐसा नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दुनिया में से निकलने की बात है। क्या कहते हैं ? पूरण

–गलन कहा न ? कर्म भी आता है और जाता है, वह भी उसके कारण से। आत्मा, कर्म का कुछ नहीं कर सकता – ऐसा कहते हैं। शरीर में भी ऐसे रोटी खाना, पथ्य रखना, पथ्य से यह शरीर ठीक रखना, यह बिल्कुल मिथ्या है। वह तो पुद्गल की / जड़ की क्रिया है। आहा..हा.. ! जड़ की क्रिया मुझसे होती है, ऐसा मानना, वह तो जड़ को अपना मानना है। भारी सूक्ष्म बात, भाई ! इस दुनिया में यह सब किस प्रकार चलेगा ? ऐसा वे कहते हैं। बड़ी-बड़ी बातें करे और ऐसे गप्प मारे। भगवान को भी वस्त्र था। दीक्षा ली न ? एक वस्त्र रखा था, आधा वस्त्र फिर उनके मित्र का था, वह दे दिया। ऐसी जैन की दया ! अरे ! चल.. चल.. । भगवान को वस्त्र होता ही नहीं। इन्द्र वस्त्र देता ही नहीं, ये सब कल्पित बातें की हैं। भगवान दीक्षा लेते हैं तो इन्द्र एक वस्त्र देता है तो कन्धे पर रखते हैं। (ऐसा श्वेताम्बर में मानते हैं)।

मुमुक्षु : .....की सम्मति हो गयी न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबकी बात। सब कल्पित। भगवान तो नग्न मुनि एकदम दिगम्बर। उन्हें तो मोरपीच्छी और कमण्डल भी नहीं होते। कल्पातीत पुरुष हैं।

मुमुक्षु : मुनि बनने के बाद वस्त्र देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : देते हैं, ऐसा आता है, श्वेताम्बर में ऐसा आता है। इस कारण से देते हैं। बारह माह, सवा वर्ष रहे, फिर छूट जाता है। मूल पाठ ऐसा है और कल्पसूत्र में ऐसा है कि आधा वस्त्र उनके मामा के मित्र थे, उन्हें दे दिया, आठ टुकड़ा रखा। यह अमरचन्दजी ने लिखा है कि जैन की कितनी दया-गम्भीरता है ! ऐसा ! अर..र ! लोगों को मारकर... वस्तु का ऐसा स्वभाव भी नहीं है। मुनि वस्त्र रखते नहीं और मुनि को कोई देता नहीं। आहा..हा.. ! जाना-आना यह पुद्गल का स्वभाव है। अपना स्वभाव नहीं।

अब धर्मास्ति की बात चलती है। धर्मास्ति एक पदार्थ है। भगवान ने केवलज्ञानी ने चौदह राजुलोक में एक धर्मास्ति नाम का (पदार्थ देखा है)। **स्वभावगतिक्रियारूप और विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव...** भाषा देखो ! आत्मा के स्वभावरूप से ऊर्ध्वगति हो या विभावरूप से चार गति में जाने की गति हो, परन्तु जीव स्वयं परिणमित होवे तो **जीव-पुद्गलों को स्वभावगति का और विभावगति का निमित्त, सो धर्म है।** लो, परिणित जीव और पुद्गल दोनों। कहो, समझ में आया ?

धर्मास्तिकाय दूसरे को गति नहीं कराता परन्तु जीव और पुद्गल स्वाभाविकगति

हो या विभाविकगति हो तो धर्मास्तिकाय को निमित्त कहने में आता है, वह धर्मास्ति पदार्थ है। सर्वज्ञ परमेश्वर में ही यह बात है। इसके अतिरिक्त किसी धर्म में, किसी मत में धर्मास्ति-अधर्मास्ति दो द्रव्य हैं ही नहीं और दो द्रव्य न हों तो लोक-अलोक का भाग होता ही नहीं। लोक और अलोक के दो भाग पड़े हैं, वे धर्मास्ति-अधर्मास्ति के कारण से हैं। समझ में आया? ऐसे भगवान ने धर्मास्तिकाय नाम का एक तत्त्व कहा। नीचे स्पष्टीकरण है। देखो एकड़ा है न?

चौदहवें गुणस्थान के अन्त में जीव, ऊर्ध्वगमनस्वभाव से... चौदहवाँ गुणस्थान। केवलज्ञान का तेरहवाँ गुणस्थान और मुक्ति होने की तैयारी हो, वह चौदहवें में होती है। ***ऊर्ध्वगमनस्वभाव से लोकान्त में जाता है, वह जीव की स्वभावगतिक्रिया है...*** तो उसमें धर्मास्ति निमित्त है। बस। गति परिणत करे तो। ***और संसारावस्था में कर्म के निमित्त से गमन करता है, वह जीव की विभावगतिक्रिया है।*** एक गति में से दूसरी गति में जाता है, वह स्वयं के कारण से जाता है। कर्म ले जाता है, ऐसा नहीं है-ऐसा कहते हैं। कर्म तो जड़-पुद्गल परद्रव्य है। एक गति में से दूसरी गति में जाना, वह जीव की विभाविकक्रिया है, धर्मास्तिकाय उसमें निमित्त है। आहा..हा..! समझ में आया? कैसा लिखा है, देखो! परिणत लिखा है न? **विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव-पुद्गलों को...** ऐसा नहीं कि कर्म ले जाते हैं - दूसरी गति में कर्म ले जाते हैं, उसमें धर्मास्तिकाय निमित्त है-ऐसा है? आत्मा ही अपनी योग्यता से एक गति में से दूसरी गति में जाता है, तब धर्मास्तिकाय को निमित्त कहते हैं। समझ में आया? कोई कहता है कि भाई! श्रेणिक राजा नरक में गये, वे तो समकिती थे, क्षायिक समकिती थे तो कर्म के कारण से नरकगति में गये।

मुमुक्षु : वहाँ जाने की किसी की इच्छा होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल झूठ बात है। अपनी योग्यता से गति में गये हैं। इसमें यह कहते हैं, देखो, **विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव...** है। विभावपरिणतरूप जीव वह स्वयं के कारण परिणमा है। कर्म के कारण से जाता है, ऐसा नहीं है। कर्म तो दूसरी चीज़ है। आहा..हा..!

मुमुक्षु : तो श्रेणिक राजा का उल्टा पुरुषार्थ पहले किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान गति का विभाव परिणमन है।

मुमुक्षु : वह नरक में गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपनी पर्याय से गये हैं, पूर्व की नहीं। सूक्ष्म बात है पण्डितजी! यह कहा न? देखो न? जीव परिणत **विभावगतिक्रियारूप परिणत जीव...** तो जीव गति में विभावरूप परिणत होता है, वह स्वयं से है। पूर्व में बहुत पाप किये थे, इसलिए गति में (जाता है) ऐसा नहीं है। वर्तमान में विभावगति की योग्यता से गति करता है।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....परन्तु नहीं। वह तो कर्म की बात हुई। वर्तमान। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : जैन में कर्म का बड़ा....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! सोगनचन्दजी कहते थे न कि कर्म से कुछ नहीं होता। यह सोनगढ़ के सन्त की ऐसी वाणी है। कर्म से आत्मा में कुछ नहीं होता। आत्मा में तो स्वयं से विकार होता है। कर्म तो जड़ है।

मुमुक्षु : जीव स्वयं अपने से किस प्रकार गति में जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं अपने से गति में जाता है। वह पर्याय का धर्म है, ऐसी बात है। पर्याय उसकी है या जड़ की है? सर्वार्थसिद्धि की गति पर्याय अपने विभाव से परिणत करता है। एक समय की पर्याय वह स्वयं के कारण से पर्याय है।

मुमुक्षु : उस समय की वैसी ही योग्यता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही है। बात ऐसी है।

मुमुक्षु : शास्त्र में तो ऐसा आता है कि कोई गति में ले जाता है....

पूज्य गुरुदेवश्री : ले जाता है वह तो निमित्त का कथन है। आनुपूर्वी.. आनुपूर्वी।

मुमुक्षु : परन्तु शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा, वह किस अपेक्षा से लिखा है? स्वयं के कारण गति करता है, वहाँ आनुपूर्वी गति नामकर्म का निमित्त कहा जाता है। कहो, समझ में आया? यह उपादान-निमित्त की गड़बड़ी। जड़ और चेतन।

मुमुक्षु : मोहनीय कर्म इत्यादि बिल्कुल कुछ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। कर्म पुद्गल है, वह तो जड़ है। जड़ में क्या

आत्मा आया ? जड़ का आत्मा कुछ कर सकता है ? जड़ आत्मा का कुछ कर सकता है ? आत्मा अरूपी है।

मुमुक्षु : जैन पर कर्म का जोर बहुत है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। बिल्कुल जोर नहीं। यह बात मिथ्या है। यह तो हमारे (संवत्) १९७१ के वर्ष से चलता है। १९७१, ५६ वर्ष हुए। कर्म से आत्मा में कुछ होता है, यह बिल्कुल नहीं। संवत् १९७१। ७० और १। विकारी पर्याय स्वयं से होती है तो दूसरी चीज़ को निमित्त कहो। दूसरी वस्तु से अपने में हो तो जीव का कोई जड़ स्वामी है कि बलजोरी से विकार करावे ? ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आपकी बात तो आश्चर्य उत्पन्न करती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है। क्या करे ? है न ? निमित्त से गमन करता है, ऐसा अर्थ है। देखो!

एक पृथक् परमाणु, गति करता है, वह पुद्गल की स्वभावगतिक्रिया है और पुद्गलस्कन्ध गमन करता है, वह पुद्गल की विभागतिक्रिया है। परन्तु प्रत्येक परमाणु विभावरूप से परिणमित हुए हैं, ऐसा बाद में स्पष्टीकरण लिया है। देखो, यह लकड़ी चलती है तो इसके विभाव परिणाम से चलती है। उसमें एक परमाणु भी अपने विभाव परिणाम से गति करता है और एक परमाणु में भी विभावरूप परिणमन है। पूरे स्कन्ध में, ऐसा नहीं, देखो! है ? ***(स्कन्ध के प्रत्येक परमाणु की) विभागतिक्रिया है।*** ऐसे चलता है। अंगुली ऐसे चलती है। प्रत्येक परमाणु में विभावगति की क्रिया परिणमन है तो गति होती है। परमाणु में एक विभावगति परिणमन हुआ। एक परमाणु में। भिन्न परमाणु हो तो स्वभावगति है, परन्तु स्कन्ध में है तो स्कन्ध में भिन्न है परन्तु विभावरूप परिणमन है तो एक परमाणु ऐसे गति करता है। हाथ ऐसे गति करते हैं। ऐसा पुद्गल का, अजीव का स्वभाव है।

इस स्वाभाविक तथा वैभाविकगतिक्रिया में धर्मद्रव्य निमित्तमात्र है। धर्मद्रव्य तो निमित्तमात्र है। कोई इसे कराता है, ऐसा नहीं है। ऐसा ही जीव और पुद्गल का विभावरूप परिणमन का स्वभाव पर्याय का है, ऐसा बराबर जानना चाहिए, यह बात यहाँ कहते हैं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)